अमरलता

[ऐतिहासिक शौर्य-काव्य]



लेखक
पटरानी, वन्दनवार, चित्रपट
और उत्सर्ग आदि
के
रचयिता

शम्भूदयाल सक्सेना



प्रकाशक

रमेशचन्द्र वर्मा

नवयुग-ग्रंथ-कुटीर,

फर्रुखाबाद

प्रथम संस्करण } १९३३ { ~~मूल्य आठ आना~~

सर्ग-सूची

सर्ग	प्रथम पंक्ति	पृष्ठ
१—	वीर मोहिलपति की कन्या	१
२—	पहन रवि किरणों की माला	१४
३—	निशा का शीशफूल प्यारा	२५
४—	राम ने पायी थी सीता	३८
५—	पूर्व अनुमान यथार्थ हुआ	५०
६—	उस समय था मध्याह्न प्रहर	६१
७—	पोछकर या सुहाग-टीका	७५
८—	यही है कोड़मदेसर पुण्य	९४



निवेदन

अपनी अल्पज्ञता को मैं जानता हूँ, पर 'उत्सर्ग' पढ़कर मित्रों ने आग्रह किया था कि मैं और भी वीरतापूर्ण कहानियाँ लिखूँ। उन्हीं की आज्ञा का यह पालन किया गया है।

मध्य-युग में राजस्थान शौर्य और वीरता का झरना रहा है। टाड साहब का यह कहना अक्षरशः सत्य है कि 'यहाँ (राजस्थान) का हर एक गाँव स्पार्टा और हरएक घाटी थर्मापली है।' लेकिन दुर्भाग्य से हमारा अधिकांश शौर्य प्रदर्शन आपसी झगड़ों तक ही सीमित रहा। उसको उसी रूप में याद करने से जो दुखता है। सोने की स्याही से लिखी जानेवाली बातें एक विशाल जाति के इतिहास को कलंकित करने की सामग्री बन गई हैं। मैं अच्छी तरह लिख नहीं सका हूँ, पर प्रस्तुत कहानी का कथानक शायद संसार के इतिहास में एक दुर्लभ वस्तु है।

युद्ध आदि का जैसा चाहिए वैसा वर्णन न होने का यही कारण है कि पद पद पर लेखनी देश के दुर्भाग्य पर रो पड़ती थी, और जान बूझकर उसकी उपेक्षा की गई। अन्त में सती के अभिशाप के शब्द इतिहासानुमोदित न होने पर भी असत्य नहीं हैं। एक नहीं अनेक सतियों के मर्मोच्छ्वासों का ही परिणाम है कि आज संसार में हमारा कोई अस्तित्व नहीं रह गया है, और तबतक हम पतन के गर्त से कदापि नहीं निकल सकेंगे जबतक अपने पूर्वकार्यों का अच्छी तरह प्रायश्चित नहीं करते।

—लेखक



अमरलता

अमरलता

[१]

[मोहिलपति, माणिकराज, की कन्या का नाम कोडमदे था। पिता ने मंडोरपति अडकमल राठौर से उसके विवाह की बातचीत की। सखी के मुँह से यह हाल सुनकर राजकुमारी ने बताया कि वह तो मन में किसी और ही को वरण कर चुकी है।]

वीर मोहिलपति की कन्या,
विश्व में हुई एक धन्या।
रूप की वह थी सोम-सुधा[1],
विभासित[2] उससे थी वसुधा।

दिव्य मणि थी वह मरुधर[3] की,
गर्व-गरिमा थी घर घर की। ६

१ चाँदनी। २ प्रकाशमान। ३ मरुस्थल।

कली-सी वह सुकुमारी थी,
प्रेम-सी सबको प्यारी थी।
ज्योत्स्ना[1] उस चन्द्रानन[2] की,
निशा हरती थी मानन की।

रम्य वह राजस्थान विभा,
विश्व-कवि की-सी थी प्रतिभा। १७

रूप से भी अनूप था मन,
देश का प्यारा गौरवधन।
वीरता पर वह मरता था,
घृणा कायर से करता था।

न्याय से भीगा था कण-कण,
त्याग-तपमय था नवजीवन। १८

१ चाँदनी। २ चन्द्रमुख।

सखी ने आकर उसे कहा—
'सुदिन है कैसा आज अहा !'
"हुआ क्या ?" उत्सुक हो बोली,
पिकी[1] ने कण्ठ-सुधा घोली।

"घोषणा पुरस्कार की हो,
सतान में न बार[2] ही हो।"२९

अधर पर खिली हास-रेखा,
शिखी[3] ने घन विलास देखा,
कली से अनिल[4] मिला मृदुतर,
राग से लास[5] मिला सुखकर।

कहा—'क्या पुरस्कार तबतक,
वृत्त कुछ ज्ञात न हो जबतक।'३०

१ कोयल। २ देर। ३ मयूर। ४ वायु। ५ नाच।

पूर्ण विश्वास किन्तु करके,
हृदय को मधुरस से भरके,
सजनि ! है प्रभु से विनय यही—
करें वे जो मैं कहूँ वही।

कल्पना-सा वर तुझे मिले,
शीघ्र तव प्रेम-सरोज खिले।" ३६

चञ्चला[1] आँखों में चमकी,
दीप्ति[2] वर दाँतों में दमकी,
पुलक से फुल्ल हुई काया,
प्रेम ने मन को नहलाया,

खील[3]-सी खिल खिल हमजोली[4]
मञ्जु स्मित[5] सहित मधुर बोली—४०

१ बिजली। २ चमक। ३ लाही लावा। ४ सखी।
५ मुसकान।

'सत्य हो आशिर्वचन फलें,
प्रेम पावस'[1] के मेघ चलें,
रसा रसमय हो जाय सभी,
भाव में भव[2] भर जाय सभी।

किन्तु वह हो अलि ! सब तेरा,
क्योंकि तेरा ही है मेरा।" ४८

"पान कर-कर यह वाक्-सुधा[3],
रसमयी होती है वसुधा,
सुलक्षण ये वन-कुसुम न हों,
किसी नागर[4] के भूषण हों।

मिलें इनका प्रेमी सत्वर[5],
कल्प में भर मधु पुष्कर[6]।" ४९

१ प्रेम रूपी बरसात। २ दुनियाँ। ३ वाणी का रस।
४ चतुर। ५ शीघ्र। ६ जल जलाशय।

चालकर भावों की तरणी[1]
विहँसती बोली वरवरणी—
"सुना क्या मेरी प्रिय बहना !
कान में सचमुच तो कहना

स्वयं रहती भविष्य अपना,
सुना जो देखा है सपना ? ६०

बधाई माणिकराज-सुता !
मृगदृगी[2], सुमुखी, हास-युता।
बधाई हे मंडोर-प्रिया !
प्रेम परिमल[3]-परिपूर्ण-हिया।

सरस, पावन, पवित्र पय-सी,
बधाई नगरी राजमहिषी !" ६६

१ नौका। २ हिरनके से नेत्रवाली। ३ सुरभि, महक।

"चित्र भावों में भरती है,
तरंगित सरिता करती है।
भटकती है, भटकाती है,
भेद पर नहीं बताती है।
शुभाशा करती है कैसी?
बधाई देती है कैसी?" ७७

सहेली ने सानन्द कहा—
"जा रहा मन में मोद बहा,
श्रवणकर यह संवाद-सुधा,
होगई धन्य आज वसुधा
कि ये राठौरवंश-पूषण[1]।
बहन! होंगे तव उर भूषण[2]।" ७८

१ सूर्य। २ हृदय के आभूषण।

"तुम्हें प्रिय ! किसने बहकाया ?
भरोसा तो भी क्यों आया ?
मुझे है तृषा राज की क्या ?
भूख है साज-बाज की क्या ?

मान को क्या मैं मरती हूँ ?
प्यार वैभव को करती हूँ ? ८४

उच्चता वंश और कुल की
कसौटी है क्या मानुष की ?
रूप-सौंदर्य, रंग-यौवन,
विश्व में है क्या अक्षय धन ?

ब्याह क्या बहन प्रलोभन है ?
वासना का या बंधन है ?" ९०

"सत्य सखि ! कथन तुम्हारा है,
तुम्हें कब वैभव प्यारा है ?
किन्तु गुरुजन जो कुछ करते,
सोचकर ही वे पग धरते ।

न गुण का आदर करते हैं ?
मान ही पर क्या मरते हैं ?" ९६

"समादर गुरुजन का करना,
उन्हें श्रद्धाञ्जलि[1] से भरना,
शिष्टता[2] और सौम्यता है,
सुजनता है, मानवता है,

प्रवीणे ! इसे न भूली हैं,
तिमिर में फली न फूली हैं । १०२

१ भक्ति भाव । २ सभ्यता ।

स्वयं सत्ता पर रहती हूँ।
लाज की आप परवशी हूँ।
हृदय यह मेरा अपना है,
स्वत्व भी इस पर अपना है।

गुणों को वरती हूँ सजनी!
'आन'[1] पर मरती हूँ सजनी! १०८

न यौवन धन की चाह मुझे,
न गृहसुख की परवाह मुझे,
शुभे! क्षत्रिय-कन्या होकर,
हृदय को बेचूँगी क्योंकर?

वरण कर लिया जिसे मन से,
बस रहा वह समस्त तन में, ११४

१ प्रतिज्ञा।

अपर[1] को वहाँ प्रतिष्ठित कर,
लहूँगी कैसे मोद प्रवर,
बडों की नाक रहेगी क्या ?
वंश की साख रहेगी क्या ?

बता तू ही कल्याणमयी !
मरने की कोई युक्ति नई। १२०

हृदय में दो प्रतिमा रखकर,
पूजना होगा क्या सुन्दर !"
"वरण है किया गया किसको ?
हृदय-धन दिया गया किसको ?

सुमुखि ! बतला तो जरा मुझे।"
'कहूँगी किन्तु न अभी तुझे, १२६

१ अन्य।

समय ही सब बतलायेगा,
स्वयं पावस[1] घन लायेगा,
सजनि ! मन दिया गया जिनको,
भाग्य से आये यदि उनको,

सुरुचि की तभी प्रशंसाकर,
हर्ष में देगी तू घर भर !" १३७

"भरोसा है रुचि का तेरी,
किन्तु यह रत्नों की ढेरी,
छिपा रखती है उचित नहीं,
प्रेम में होता भेद कहीं ?

बहन ! बहनापे[2] की बातें,
जानती नहीं छद्म[3]-घातें।" १३८

१ वर्षाकाल। २ मित्रता। ३ छल।

कुन्द-सी स्वच्छ हँसी हँसकर,
झुके दोनों के मुख-शशधर[1],
हुई बातें गुपचुप क्षणभर,
स्नेह-सागर में उठी लहर,

चित्र-चित्रित-सी छवि कोई,
ग्राम की आँखों ने खोई। १४४

—:o:—

1 मुख चन्द्र।

[पूगल का शासक भाटी राजकुमार साडूल उस समय अपना वीरता के लिए राजस्थान में प्रसिद्ध था। वह एक बार गोविन्द का अतिथि बना। राजकुमारी कोडमदे इसी वीर की वीरता पर मुग्ध थी।]

पान [illegible] [illegible] की माला,
[illegible] [illegible] की [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] में [illegible],

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

१ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible]। ५ [illegible]।

समुन्नत अरावली-श्रेणी,
मरुस्थल की विशाल वेणी,
घूमकर घेर रही थी यों,
सघन घन घटा घिरी हो ज्यों।

बीच में सैकत सिन्धु[1] पड़ा,
भरि भभूरि[2] से था उमड़ा। १७

किसी में साहस शेष न था,
दर्प[3] दर्पण में तेज न था,
न चढ़ता था कोई मग में,
धरा होती न ललित पग में।

विजन था दिग्व्यापी[4] मरुधर,
आँधी में थथर रहे थे घर। १८

१ बालू का समुद्र। २ गर्म धूल। ३ घमंड। ४ चारों तरफ फैला हुआ।

न विषधर[1] डसते थे पग को,
मारते थे न सिंह मृग को,
प्रजा भयभीत न थे युद्ध[2] से,
सशंकित मीन न थे नक्र[3] से,

प्रवास से अलसित थे थलचर,
सीमा[4] में न्यस्त थे जलचर। २४

[illegible] फिर भी दिन परिचर,
[illegible] ने [illegible] का [illegible],
[illegible][5] किरणों का [illegible],
[illegible]

[illegible]
[illegible]। ३०

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible]

सूर्य था वह भाटी-कुल का,
विश्व विश्रुत[1] नृप पूगल का,
उचित सादूल नाम पाकर,
सिंह सम ओज अतुल रखकर,

शूर योद्धाओं को वशकर
जय-श्री वरता था घर घर। ३६

मल्ल शस्त्रास्त्र वर्म[2]-सज्जित
वीर भावों में विनिमज्जित[3],
निकलता अश्वारूढ़[4] जहाँ,
धरा धँसती थी वहाँ-वहाँ।

रेणु[5] उसके प्रताप-रवि से,
चमकती थी अतुलित छवि से। ४०

१ दुनियाँ में मशहूर। २ कवच। ३ मग्न। ४ घोड़े पर सवार। ५ रज।

वायु बहता था सन सन सन,
गगन में उठकर काले घन,
हिमालय ढाने जाते थे,
विरह की वर्षा लाते थे,

रम्य उस पावस में भी क्य,
शान्त मन का था वह हिमव ? ४८

मानिनी,[1] उच्चाकांक्षाकुल[2],
शौर्य-निर्झर,[3] मान-संकुल[4],
[illegible] मुकुट[5] [illegible],
हृदय [illegible] ज्वाला में [illegible]।

ग्रीष्म, वर्षा क्या और [illegible],
[illegible] था [illegible][6] [illegible]। [illegible]

[illegible]

सामना समर[1] में करना,
मृत्यु-मुख मे था आ पड़ना,
इसीसे मौन हुए रहते,
शूल मन का मन मे सहते,

वीर सारूल उन्हें यम था,
आयु-सुख शल्य[2] से न कम था । ६०

क्रूर, निर्दय, निर्मम[3] ही हो,
दया से सदय न तन-मन हो,
न ऐसा था वह नर-भूषण,
भव्य-भावुक था उसका मन ।

दया दीनों पर वरता था,
कृपा के पुष्प वितरता था । ६६

१ युद्ध । २ काँटा । ३ निष्ठुर ।

निरवलयों पर करुणा-नल,
गिराया करता वह अविरल',
राज्य में अपने सुरसरिता,
प्रवाहित यथाशक्ति करता।

शुभ्र उनकी आकांक्षा थी,
शान्ति की अनुपम वाञ्छा' थी। ७२

[illegible]युग पर भार था ऐसा,
घना था जीवन भी वैसा,
[illegible]' ही एक परीक्षण थी,
सभी गुणों की [illegible] थी।

[illegible] युग-[illegible] पथ [illegible]
[illegible] होता था [illegible]। [illegible]

१ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

सुना जिसने वह स्तब्ध रहा,
किसी ने शब्द न एक कहा।
चित्र चित्रित-से लोग रहे,
भाव-लहरों में विसुध बहे,
ओज[1] से दीप्त हुए आनन,
तेज से चमक उठे तन-मन। १०८

सत्य अतिरञ्जित[2] है अथवा,
कल्पना है रसमय किंवा[3] ?
कुसुम हैं कोई अम्बर के ?
स्वप्न हैं राज्याडंबर[4] के ?
कह सका कोई कुछ न वहीं,
मौन थे श्रोतावृन्द वहीं। ११४

१ तेज। २ कल्पित, बढ़ाकर कहा हुआ। ३ या तो। ४ शक्ति प्रदर्शन।

गर्व से ऊँचा शीश किये,
खड्ग पर दक्षिण[1] हस्त दिये,
वक्षपर प्रस्तर शौर्य धारा,
मूर्ति-सा अंकित था प्यारा—

वीर मातुल प्रफुल्लित मन,
प्रभा में जगमग कर आनन। १०

गगन में ऐसा पराजित दिन,
गुरु ने, पाकर नवजीवन,
[illegible] पर था,
[illegible] को।

[illegible]
[illegible] । ११

१ दाहिना।

[३]

[सखी ने कादमद को बताया कि उसका प्रेमी उसका अतिथि बना है। राजकुमारी का निश्चय पिता को मालूम हुआ। लड़की को समझाने के बाद माणिकराज ने माद्गल के साथ ही उसका विवाह कर देना तय किया।]

'निशा का शीशफूल[1] प्यारा,
कान्त कमनीय[2] कलित न्यारा
खिला था अम्बर[3] के सर में,
तरी[4]-सम लेकर पल भर में,

ले गई उसको स्वर्ण-किरण,
न मन मे लिया दया का कण! ६

१ चन्द्र से तात्पर्य। २ सुन्दर। ३ आकाश। ४ नौका।

चीर यह उज्ज्वल तारों से,
सुसज्जित हीरक हारों से
उतारा क्योंकर रजनी ने ?
छिपाया या बैरिनी ने—

उसे लेकर सर के भीतर,
कुटिलता से उर को भरकर ? १२

गगन की यह प्रकाश-गंगा,
रूप किसका करती [illegible]
[illegible] माधुरी¹ किस की पर ?
पीन पर [illegible] उँगली धर

[illegible]² [illegible] का [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ? १८

१ [illegible]। २ [illegible]।

जलज[1] की यह असंख्य आँखें,
प्रतीक्षा इसकी क्यों राखें ?
निठुरता इनको क्या भाती,
प्रेम मे हैं या मदमाती ?

विहँग क्यों गाने लगते है ?
बाँस सुर में सुर भरते हैं ? २४

सुमन क्यों अपनी पखड़ियाँ
खोलकर, भावों की लड़ियाँ
बिछाने लगते मन मन में ?
सुरभि[2] यों भरते जन-जन में।

स्वार्थ में कौन प्रलोभन है ?
वही क्यों जन-मन-मोहन है ?" ३०

१ कमल। २ महक।

खोलकर वातायन[1] अपना,
देखती बैठी-सी सपना,
ध्यान मग्न, आपाधीना,
भाव-लहरों पर आसीना[2],

नगीने-सी वर कान्ति नइ
लिये, नृप-दुहिता[3] मानमयी। [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] आय
[illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] धूप, फिर [illegible] वाली—
[illegible] है [illegible] [illegible]?

[illegible] [illegible][4] [illegible] [illegible]
[illegible][5] से मधु [illegible]— [illegible]

१ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]। ४ [illegible]। [illegible]
[illegible]।

भला हैं किसे भुला सकते,
न उपमा जो जग में रखते,
स्पर्श-सुख जो अनुपम देते
भेद जो यों ही कह देते।"

भग उल्लास-हास-सुख के,
हुए तब सम्मुख मुख मुख के। ४८

"प्रतीक्षा किसकी है ऐसी ?
चकोरी हिमकर[1]-प्रति जैसी,
नेत्र किसके पथ में खिंचते ?
पलक किस स्मृति में यों सिंचते ?

हुई अब तो पूरण आशा,
शेष अब क्या है अभिलाषा ? ५४

१ चन्द्रमा।

प्रतिथि तो बनकर अब आये,
सलोने प्रियतम मनभाये।"
नग-स्वप्नोत्थित-सी¹ बाला,
खोलकर दृग पङ्कजमाला

सखी की ओर हेर बोली—
'ठठोली² यह कैसी भोली ?" ६०

"सत्य ही तो है अतिथि थे,
मीत ने आकर थे सुने³ !
शौर्य की दुर्लभ गाथाएँ⁴,
प्राणों की मनहर मन भायें।'

'शरण है मुझे प्यारा ! सखी,
[illegible] न [illegible] देगी।' ६१

१ [illegible] २ हँसी। ३ [illegible]
४ [illegible]

सखी धर[1] उसकी बाहु-लता,
मोद में भरकर मृदु ममता,
हुई सन्नद्ध[2] दिखाने को,
चले द्रुत-गति[3] ले जाने को,

किन्तु रुककर इस भाँति कहा—
"बात है दुष्कर एक महा, ७२

अभी तक वैसी ही सारी,
ब्याह की होतीं तैयारी,
किन्तु क्या तुम विरोध करती ?
प्रेम प्रण का प्रबोध करती ?

न महिषी[4] को ही बतलाती ?
मुझे भी फिर क्यों बहकाती ?" ७८

१ पकड़कर। २ तैयार। ३ शीघ्र। ४ रानी।

'सजनि! मैं तुझे ठगूँगी क्यों?
अनृत' के पथ लगूँगी क्यों?
किन्तु माँ के समक्ष कहना,
घोर लज्जा है सिर सहना।"

"अन्त में कहना ही होगा,
धर्म को सहना ही होगा।" (४)

'हित् है मेरी यह तेरी
सभी तू कहलाती मेरी,
सर्व हित, और धर्म भी हो,
सुख-स्वार्थहित-धर्म भी हो,

इस न ऐसे काम पड़ा,
सौंपती मुझ भार करना।'१

१ अर्थ ।

सखी तब गई मोद भरके,
कहा रानी से जाकरके,
सुना नृप ने भी ज्यों-त्योंकर,
घोरतर चिन्तारत होकर,

सुता को फिर यों समझाया,
सिखावन देकर मनभाया—९६

"भयङ्कर होगा इसका फल,
मचेगी भीषणतम हलचल।"
सलज्जा, नम्र मुखी कन्या,
सुशीला, सुमुखी, सौजन्या,

खोदती-सी नख से धरणी,
मौन हो बैठी मनहरणी। १०

आँख में भूरि भरा था जल,
रुद्ध वाणी थी, मन विह्वल,
अधर थी नीरव किन्तु मुख पर,
और रेखा थी ओठों पर

उस पर नृप ने पहचाना,
मोह का पूर्ण मर्म जाना। १०८

निकल अन्तःपुर से सत्वर,
भूप आये यों उस थल पर,
जहाँ गमनोद्यत[1] अतिथि प्रवर,
हुए थे एकत्रित सत्वर,

सुनाकर वृत्त पुनः बोले,
धर्म-संकट के पट खोले। १२०

रहा शार्दूल स्तब्ध क्षणभर,
भरे मस्तक पर श्रम सीकर[2],
यादकर जयदात्री काली,
दृष्टि योद्धाओं पर डाली,

पराक्रम प्रोज्ज्वल, प्राणोन्मुख[3],
दर्प-दर्पण[4] थे जिनके मुख। १२६

१ जाने को तैयार। २ पसीने का बूँद। ३ उत्साह से भर।
४ गर्व के प्रतिबिम्ब।

हुआ परितोष, मिली आशा,
हृदय में जन्मी अभिलाषा,
कहा नृप से, "हूँ मैं प्रस्तुत,
अर्थ से रहित, धर्म-संयुत,

रक्त से चाहे धरा रँगे,
मृत्यु आ उर से क्यों न लगे ? १३२

निबाहेंगे कर्तव्य अटल,
प्रतिज्ञा पालेंगे अविकल¹,
प्राण रहेंगे अशोक निर्भय,
धर्मपथ होगा मङ्गलमय,"

नृप को दे आशा-संबल²,
पिता शेखर चल दिया सहर्ष । १३३

१ पूरी । २ आशा का सहारा ।

रसमयी भरे मधुर चितवन,
लिये मृदु मोती-से जल-कण,
बिछी थी दो आँखें पथ-पर,
झरोखे से सौत्सुक, सुन्दर।

उधर देखा, दृग चार हुए,
प्रेम पर मन बलिहार हुए। १४४

[सादूल और राजकुमारी का विवाह होगया। उसी समय गुप्तचर ने खबर दी, मंडोर की सेना युद्ध के लिए सज रही है। राजा डरे और अपनी सेना सादूल को देनी चाही, पर उस वीर ने न ली। अपने थोड़े से वीरों के साथ ही डोला ले चला।]

राम ने पायी थी सीता।
जग श्रुत[1] है गौरव-गीता।
समय यद्यपि अनन्त बीता,
हुआ फिर भी क्या घट रीता[2]?

अमर है, वह अविनश्वर है,
कीर्ति का वह अजस्र[3] स्वर है। ६

१ विश्व विख्यात। २ खाली। ३ निरंतर।

नृप-सुता ने त्यों प्रिय पाया,
हेम[1] को मणि ने अपनाया ।
कीर्ति-कल-कुञ्ज हुई काया,
प्रेम की मञ्जु हुई माया ।

आम से मिली नवल वेली[2],
चञ्चला जलधर[3] में खेली । १०

व्याह के मन्त्रोच्चारों में,
मिलन के मृदु उद्गारों में,
मनोरथ[4] की यह हरियाली,
माध[5] की यह सुरभित डाली,

लहलहा उठी एक क्षण में ।
हृदय के मिश्रित उपवन में । १८

१ सोना । २ लता । ३ बादल । ४ इच्छाओं । ५ कामना ।

भाँवरों के ये थे फेरे,
या कि प्राचीरों[1] के घेरे?
प्रेम-कारा[2] में बन्दी बन,
पड़े दोनों के प्रेमी मन,
अचिंतित, हर्षित, पुलकित-से,
विमोहित, स्वप्नोन्मादित-से। २४

प्रजा राजा में, स्वजनों में,
स्नेह-परिपूर्ण परिजनों[3] में,
हर्ष की वासन्तिक[4] सुषमा[5],
पा रही थी अपूर्व उपमा।
उमगित थे आनन-लोचन,
तरंगित थे समस्त तन-मन। ३०

१ चौबारों। २ बन्दीगृह। ३ अनुचरों। ४ वसन्ती। ५ सौंदर्य।

मांगलिक बाजों की धुन मे,
अलकारो की रुनझुन में,
तरुणियो के कल गीतो में,
कुलाचारो मे, रीतों में,

भर रहा था विनोद-निर्झर,
प्रवाहित था प्राणो से घर। ३६

हुई थी पूरण चिर-वाञ्छा,
फली-फूली थी आकांक्षा।
वधू का विहसित चन्द्रवदन,
समालोकितकर[1] अवगुंठन[2],

प्रतिच्छबि[3] भर-भर जीवन मे,
मोद मढता था कण कण में। ४२

१ प्रकाशित। २ घूँघट। ३ छाया।

किन्तु उस आनन्दोत्सव में,
राग-रंगों के उद्भव में,
सौख्य के मुखरित[1] कानन में,
मोद-मन्दिर के आँगन में,

क्षितिज[2] के छोरों तक छायी,
घटा चिन्ता की घिर आयी। ४८

प्रणिधि[3] त्यों एक वहाँ आया
वृत्त वह विषम एक लाया।
"होरही थी जो आशंका,
बजेगा क्या रण का डंका?"

सोच में पड़ यों मोहिलपति,
होरहे थे विमूढ़-हतमति। ५४

१ गुंजित शब्दमय। २ वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश मिले प्रतीत होते हैं। ३ गुप्तचर।

उपस्थित हो सम्मुख तत्क्षण,
प्रणत चर ने यों किया कथन—
'चन्द्र छिप सका न अञ्चल में,
गया सवार वहाँ पल में,

अतः सज्जित मंडोर-अनी,
चली है रण के लिए तनी। ६०

सर्प सम पद-मर्दित, रोषित,
दिशाओं को करते घोषित[1],
तिरस्कृत, अपमानित, दर्शित[2],
खड़े राठौर युद्ध के हित,

रुद्ध[3] पथ पूगल का करके,
क्षोभ को ईर्ष्या में भरके।" ६६

१ शब्दित। २ दबा हुआ। ३ बन्द।

दीर्घ नि श्वास एक लेकर,
मौन रह गये भूप क्षणभर।
शुभ-श्री को फिर संचित कर,
कहा—"रक्षक है विश्वम्भर—

क्षुद्र तृण है प्रयास जन का,
क्षुब्ध उस महाप्रभञ्जन[1] का। ७७

महार्णव[2] है वह, जग-शीकर[3]
करे उसकी समता क्योंकर ?
संघटित[4] होगा सब वैसा,
उसे होगा वाञ्छित जैसा।"

हृदय को यों करके संयत,
नृपति फिर हुए कार्य में रत। ७८

१ अन्धड़, आँधी। २ महासागर। ३ छींट, छोटी बूँद।
४ आ मिलेगा, होकर रहेगा।

सजग सेनप[1] को शीघ्र किया,
और या उसे निदेश[2] दिया—
"कि प्रस्तुत करो पूर्ण सेना,
यत्न से रण-तरणी खेना,

वर वधू सकुशल पहुँचाना,
निभाना वीरोचित बाना।" ८४

कहा वीरों ने—'जय जय जय,
सामने हो यदि मृत्युञ्जय[3],
उसे भी हम ललकारेंगे,
युद्ध के लिये प्रचारेंगे।

बजायेंगे लोहा ऐसा।
कि अश्रुत हो जग में जैसा। ९०

१ सेनापति। २ आज्ञा। ३ मृत्यु को जीतनेवाला।

प्राण का है जब तक स्पन्दन[1],
रक्त-प्रवाहित[2] है जब तक का,
वर-वधू का, आगत-जन का,
बाल भी होगा क्या बाँका,

उठायेगा जो दृष्टि उधर,
रहेगा वही आँख खोकर।" ९६

भूप हों जब तक स्वस्थ-सुचित[3],
हुआ त्यों आम्र समुपस्थित,
स्वयं शार्दूल वीर विश्रुत,
अमित आलोक ओज[4], बलयुत

कहा—"हो अविनय बड़ी क्षमा।
विश्व में है न कहीं उपमा। १०२

१ धड़कन। २ खून के प्रवाह से युक्त। ३ प्रसन्न मन।
४ तेजस्वी।

अलौकिक भाटी-वीरों की,
हठीले इन रणधीरों की।
अल्प है कभी न अपना बल,
शलभ[1] होगा प्रचण्ड अग्निल।

आप हों रञ्च न चिन्तातुर,
लग्न चुका हूँ रण-रोप प्रचुर[2]। १०८

युद्ध होगा भी क्या निश्चय ?
और होगा ही तो क्या भय ?
वीरवर मरकर ही जीते,
नीर शोणित[3] ही का पीते।

स्वर्ग है उनको रण प्यारा,
पुण्य-पावन है असि धारा[4]।" ११४

१ पतंग। २ बहुत। ३ रक्त। ४ तलवार की धार।

भूप ने फिर फिर समझाया,
ध्यान में पर युद्ध कब आया ?
विदा थी शेष अभी लेना,
वही ली, न ली किन्तु सेना।

किस तरह नरपति मौन रहे ?
विवशता उनकी कौन कहे ? १२०

हृदय से बाहर छल छल छल,
गिराया महिषी ने दृग-जल[१]।
बिम्ब[२] अपनी वर आत्मा का,
कुशल कौशल विश्वात्मा का,

वर्ण कुन्दन का जगमग सा,
हास्य मृदु फूलों के रँग-सा, १२६

१ आँसू। २ प्रकाश। ३ ईश्वर।

हुए सब जिसमें एकत्रित,
रूप की रेखा-सी चित्रित—
स्वयं थी जो सुचारु लीला[1],
सुशीला दुहिता[2] छबिशीला,

छोड थी महल वही जाती,
क्यों न फटती माँ की छाती ? १३२

विदा दी लोकिक-रीतों ने,
और उन मंगल-गीतों ने
उसे, आनँद-जल वर्षाकर,
गई पर करुणा ऐसी भर,

न आँखो ने जो धो पाई,
न स्मृति-मन्दिर से खो पाई । १३८

1 अपूर्व क्रीड़ामयी । 2 कन्या ।

[५]

[मडोर-सेना को मार्ग रोके रखकर सादूल ने अपने वीरों को तैयार रहने के लिए कहा। वीरों के हुकार भरने पर आप अपनी नववधू से विदा लेने गया। कोडमदे ने हँसकर पति को विदा दी और अपने रक्त से उसका अभिषेक कर दिया।]

पूर्व अनुमान यथार्थ हुआ,
सुना था जो, सब सार्थ[1] हुआ।
रोककर पथ मडोर-अनी,
खड़ी थी प्रस्तुत व्यूह घनी।

प्रथम निज अस्त्रों को तोला,
पुन सादूल सिंह बोला— ६

१ ठीक।

'वीरवर ! आज परीक्षा है,
तुम्हें देना रण भिक्षा है,
शौर्य की यही सुशिक्षा है,
दिशा से यही प्रतीक्षा है—

कि हो अरि खड्ग प्रस्त सम्मुख,
प्रहारों[1] से मिलता हो सुख। १७

मर भी तो हो शर-शय्या[2],
गले से लिपट रही हो ज्या[3]।
स्वर्ग का खुला पड़ा हो पथ,
पराक्रम का बढ़ता हो रथ,

रक्त हो अपना गङ्गाजल,
वही वरदान, वही सम्बल[4]। १८

१ चोटों। २ बाणों की सेज। ३ धनुष की डोरी। ४ आधार।

जय तिलक करे स्वय काली,
रक्त से भरकर निज थाली।
कपाली[1] का ताण्डव-नर्त्तन[2],
शत्रु का करे कोप-कर्त्तन।

रोष की धधक उठे ज्वाला,
भस्म हो उसमें अरि-माला।" २४

वधू का ले सतर्क डोला,
कहा वीरों ने, "बभोला।"
हिली धरणी, पहाड़ डोला,
भगे कायर ले-ले चोला[3],

रहे रण-राते वीर खड़े,
युद्ध-हित निज निज ठौर अड़े। ३०

१ शिव। २ नाच। ३ शरीर।

उधर बढ़कर मंडोर-नृपति,
सैन्य को देते थे अनुमति।
दीप्त उनका था मुख-मंडल,
तेज का आकर एक प्रबल।

वक्ष विस्तीर्ण, सुदृढ़ अवयव,
जलद-गंभीर[1] उच्च था रव। ३६

दूत जो सम्मुख वहाँ रहा,
बुला उससे इस भाँति कहा—
"शत्रु से जाकर यों कहना,
वह्नि[2] में उसको यों दहना—

अश[3] हरि[4] का तो हरण किया,
वार[5] पर उसका नहीं लिया। ४२

१ बादल की तरह भारी। २ आग। ३ भाग। ४ सिर।
५ चोट।

खड़ा है सो वह धैर्यच्युत,
विकंपित, क्रोधित, रण-प्रस्तुत ।
सजग शस्त्रास्त्र सुसज्जित हो,
न भय-नद में विनिमज्जित हो,

दिखाओ रण कौशल, जिसपर
भरोसा है तुमको नरवर ! ४८

प्रदर्शित किये बिना विक्रम,
शत्रु को किये बिना अक्षम,[1]
न होगा अब घर को जाना,
छोड़कर सम्प्रति वर बाना,[2]

मारना या मरना होगा,
रक्त-सर यों तिरना होगा ।" ५४

१ क्षमतारहित । २ दूल्हे का वेश ।

श्रवण करके मादूल हँसा,
कमर को भली प्रकार कसा।
"यही आशा थी," फिर बोला,
"चलो, मचने दो रण रोला[1]।"

दूत को यों कह विदा दिया,
कठिन कर अपना हृदय लिया। ६०

गया तब डाला के सम्मुख,
सुदृढ़ भावों से हो उन्मुख[2]।
विधु मुखी[3] का मुख शशि लखकर,
कहा उसको सम्बोधन कर—

"प्रेममयि, प्रिये, प्राण प्यारी,
न कहने का हूँ अधिकारी। ६६

१ युद्ध की हलचल। २ मुख उठाये। ३ चन्द्रमुखी।

प्रेम का मिला कहाँ अवसर ?
भ्रमर कब भेंटा इन्दीवर[1] ?
चन्द्र का हुआ कहाँ चुम्बन ?
हुआ कब घन-चपलालिंगन[2] ?

कभी यदि हो वह मधुर-मिलन,
सार्थ होंगे ये सम्बोधन। ७७

अभी तो ऐ क्षत्रिय-बाले!
रक्त के भरने हैं नाले।
रण-विदा देना हर्षित-मन,
मलिन मत करना चन्द्र वदन[3],

खोलकर अभिमन्त्रित[4] बंधन,
बाँध दो हँसकर रण कंकण।" ७८

१ कमल। २ बादल बिजली की भेंट। ३ मुख चन्द्र।
४ मन्त्रों से पवित्र किया हुआ।

शिखा[1]-सी दीपक की जलकर,
प्रभा से होकर उज्ज्वलतर,
सलज्जा लज्जा को ढककर,
विहँसकर बोली, "प्राणेश्वर !

हमारे चिरजीवन-सहचर !
साधना[2] के ऐ मेरे वर[3] ! ८४

अनुचरी[4] को हैं वेद-वचन,
आपके सारे अनुशासन[5]।
इसी दृढता पर यह तन-मन,
वारकर प्रभु को किया वरण।

आर्य ! अक्षुण्ण[6] रहे सारा,
वंश का चिर-गौरव प्यारा। ९०

१ बत्ती। २ तपस्या। ३ वरदान। ४ दासी। ५ आज्ञा।
६ अखण्ड।

आप जाकर हों रण मे रत¹
जानती हूँ मै अपना व्रत।
अस्त्र-सञ्चालन, रण कौशल,
आपका जग विश्रुत भुजबल,

देखने की ऐ शत्रुञ्जय!
लालसा है मुझको अतिशय। ९६

पराजित कर रिपु शत्रुदमन!
लौट आयेंगे हर्षित मन,
दिखाऊँगी निज अन्तरतम²,
खोलकर, सञ्चित प्रेम-परम।

करूँगी पूरी चिरवाञ्छा,
न रहने दूँगी आकांक्षा। १००

1 लगा हुआ। 2 हृदय।

और यदि कहीं अनिष्ट हुआ,
न मम सुख विधि को इष्ट हुआ,
विरह तो भी क्या जीवनधन !
सह सकेगा यह कोमल तन ?

मिलेंगे वहाँ खोलकर मन,
न होगा फिर विच्छिन्न[1] मिलन।" १०८

छेदकर अपना कोमल तन,
निकाले कई रक्त के कण,
कृशाङ्गी[2] तरुणी बाला ने,
रूप-रत्नों की शाला ने,

किया अभिषेक, विदा दी यों,
कान्ति-सङ्कलित[3] उषा हो ज्यों। ११४

१ अलग। दुबली पतली। ३ उज्ज्वल।

गये जब प्रियतम शौर्यसदन[1],
मुग्ध, अवसन्न[2], प्रफुल्लवदन,
जहाँ थी सजी खड़ी सेना,
जहाँ रिपु से था रण लेना,

हुई उस ओर एकटक धन[3]
पोंछकर आँख, थामकर मन ! १२०

१ वीरता के घर। २ दुखी, उदास। ३ खो।

[६]

[दोनों सेनाओं में घमासान मचा, फिर सादूल और अडकमल का भीषण द्वन्द्वयुद्ध हुआ। अन्त मे आहत होकर दोनों एक साथ रणभूमि मे गिर पड़े। अडक्मल तो कुछ देर में सचेत होगया, पर वीर सादूल फिर कभी न उठ सका।]

उस समय था मध्याह्न प्रहर,
भानु लोहित[1] उद्दीप्त प्रखर।
रश्मि[2] के छोड रहा था शर,
या कि वे थे असख्य विषधर।

चराचर को डसने आते,
वह्नि वसुधा पर बरसाते। ६

१ लाल। २ किरण।

देखती हुई परस्पर यों,
खड़ी थीं दो सेनायें क्यों ?
कराली कृत्या[1]-सी प्रस्तुत,
नग्न करवाल[2], परिघ[3], शरयुत।

उन्हें थी आज्ञा की देरी,
कि बज उठती बस रण भेरी। १७

मिला संकेत, तड़ित[4] चमकी,
चमक से वसुधा तक धमकी।
खिच गईं तीखी तलवारें,
भभक कर बहीं रक्त-धारें।

शीश धड़ कटे, हुए निपतित,
मरे आर्यों से आर्य अमित। १८

१ चंडा। २ तलवार। ३ शूल। ४ बिजली।

विशिख[1] बरसे ज्यों झड़ी लगी,
वीरता सोई हुई जगी।
दुधारे चले, चलीं बर्छी,
कटारें हुईं पार तिरछी।

चतुर्दिक 'मार-मार' सुनकर,
रुण्ड उठते थे गिर गिरकर। २४

पवन थे चारों रुद्ध हुये,
युद्ध के रङ्ग अनेक हुये।
मार 'छप-छप' तलवारों की,
चोट दुर्धर्ष[2] प्रहारों की,

कर्ण-रन्ध्रों[3] को भरती थी,
भीत वीरों को करती थी। ३०

१ बाण। २ प्रचण्ड। ३ कानों के छिद्र।

न रण चडी[1] पर तुष्ट हुई,
श्रान्ति हृदयों से नहीं छुई।
वेग-विद्युत से हो खंडित,
श्रंग करते थे भू मंडित।

चूर्ण होते थे हय-गय[2] रथ,
रुद्ध करते थे शव गिरि[3] पथ। ३६

दूर परिणाम देख रण का,
अन्त आच्छन्न देख प्रण का,
शत्रु दोनों ही थे कातर,
कि कब वे करें द्वन्द्व-सगर[4] ?

गया जब उनसे नहीं रहा,
उभय पक्षों ने यही कहा— ४२

१ युद्ध की देवी। २ हाथी। ३ मुर्दों के पहाड़। ४ द्वन्द्वयुद्ध।

"रुदन पूरित हों क्यों घर-घर ?
विलापों से क्यों भरे नगर ?
परस्पर द्वन्द्व-युद्ध ठन के,
हौसले कढें क्यों न मन के ?

कटे क्यों सैन्य, नष्ट हो बल ?
जले क्यों ज्वाला से हृत्तल ?" ४८

रुक गये हाथ, थम गया रण,
बन गये सैनिक दर्शकगण।
शौर्य प्रतिमूर्ति वीर दो बढ,
चले निज निज घोडोंप र चढ।

भीष्म भृगुनाथ[1] तुल्य सत्वर,
हुए सम्मुख दो योद्धावर। ५४

[1] परशुराम।

व्यंग्य[1] बोले मंडोर-नृपति—
"आइये बढ़कर पूगलपति!
व्यक्तकर जग में रणकौशल,
कीजिये दर्शित निज भुज बल।

किया दुष्कर[2] साहस जैसा,
समर भी होगा अब वैसा।" ९८

सहज स्मित[3] ओठों पर लाकर,
कहा पूगलपति ने सत्वर—
"धर्म ही तो है क्षत्रिय का,
करे स्वागत रण में प्रिय का।

सदा प्रस्तुत हूँ मैं सम्मुख
न रण से हूँ मैं कभी विमुख।" ९९

१ लगती बात। २ कठिन। ३ मुस्कराहट।

'धर्म का तो अब बोध हुआ,
न उसका पहले शोध हुआ ?
शौर्ययुत, धर्मोचित, अनुपम,
यही है वीरों का विक्रम ?

धन्य सद्धर्म ! धन्य प्रतिभा !!
वीरता की यह धन्य प्रभा !!' ७७

मूठ पर हाथ खड्ग की धर,
रोष से लोचन रक्तिम[1] कर,
कहा मादलसिंह ने तब—
"न अवसर है शिक्षा का अब

उठा लो अस्त्र-शस्त्र कर में,
आ डटो सम्मुख समर में।" ७८

1 लाल।

"नही देखा है जिसका मुख,
शून्य है जग जिसके सम्मुख,
सान्त्वना-वाक्य उसे कहकर,
विदा तो ले आओ जाकर।

मिलेगा फिर न कभी अवसर,
वीर! है अन्तिम यही प्रहर।"८९

"न भिन्न से टल सकता है रण,
खोलकर फेंको रण-कंकण,
विमुख हो पकड़ो अपना पथ,
अग्रसर[1] करो दैन्य का रथ।

अन्यथा कुशल न निज जानों,
शीश पर मृत्यु खड़ी मानों। ९०

१ आगे।

क्षितिज तक फैला नीलाञ्चल[1],
और यह विस्तृत अवनीतल,
सूर्य की यह स्वर्णिम[2] छाया,
विश्वपति की मोहक माया।

देखकर सफल करो लोचन,
न इनका होगा फिर दर्शन।" ९६

प्रबल हो उठी रोष-ज्वाला,
उभय वीरों ने घृत डाला।
खिँच गई तेग, उठे भाले,
शौर्य के उमड चले नाले,

वीरता मे दोनो थे सम,
हस्तलाघव[3] था अद्भुततम। १०७

१ नीलाकाश। २ सुनहला। ३ हाथ की फुर्ती।

वाम-दक्षिण[1] दिशि से बढ़कर,
वार करते थे क्षण क्षण पर।
हो उठे थे जर्जर अवयव[2],
न विचलित हुये वीर-पुङ्गव[3]।
शिथिल उनका न रणोत्सव था,
न जी में भय का उद्भव था। १०८

वक्ष पर टूटी तलवार,
हुई बाणों की बौछार।
लिए भाले सम्मुख डटकर,
दिखाई पीठ न पर हटकर।
विलोका जिसने 'धन्य!' कहा—
लोमहर्षण[4] था युद्ध महा। ११४

१ बाँया दाहिना। २ अंग। ३ वीरश्रेष्ठ। ४ रोआँ का खड़ा कर देनेवाला।

प्रहारों से था काम उन्हें,
रच भी न था विराम उन्हें ।
चूर्ण हो गिरे वज्र आयुध,[1]
हो उठे स्तब्ध-चकित रण बुध[2] ।

न खण्डित रण-प्रयास हुआ,
न बल पौरुष का ह्रास हुआ । १००

घोरतर और हो उठा रण,
दृश्य था वह कैसा भीषण !
परस्पर दो मृगेन्द्र[3] भिड़कर,
टक्करें लेते बढ़-बढ़कर ।

पराजय-जय के किन्तु कहीं,
प्रकट होते थे चिह्न नहीं । १०६

१ हथियार । २ युद्ध कुशल । ३ सिंह ।

रक्त से लोहित कर अम्बक[1],
लक्ष्य कर वैरी का मस्तक,
खड्ग मुगलपति ने निधड़क,
चलाई तीक्ष्ण और घातक।

मची रिपु सेना में हलचल,
एक छाया आतंक प्रबल! १३७

चतुर राठौर वीर ने पर,
उसे यों रोका बढ़ सत्वर।
और थोड़ा-सा पा अवसर,
ताक कर किया वार सिर पर।

साथ ही साथ प्रहार हुए,
शस्त्र दोनों के पार हुये। १३८

१ नेत्र।

शिखर सम गिरि के वज्राहत[1],
गिरे दोनों ही क्षत विक्षत[2]।
प्रकाशित था जिनमें अम्बर,
गिरे वे दो तारे भूपर!

रही सेना चित्राङ्कित-सी[3],
ज्ञानहत[4], मूढ, सशंकित-सी! १४४

वीर राठौरराज विश्रुत,
हुये थे केवल मूर्च्छायुत,
अत वे उठ बैठे सत्वर,
नहीं सादूल उठ सका पर!

वीर चिर-निद्रा में सोया।
—दिशायें रोई, जग रोया! १५०

१ वज्र से मारा हुआ। २ बुरी तरह घायल। ३ तसवीर में खिंची। ४ विवेक-रहित।

ब्याह का कङ्कण न था खुला,
न मेंहदी का रँग अभी धुला।
भरा अरमानों से था मन,
न हँसने पाया किन्तु सुमन!

हास से प्रथम विनाश हुआ,
क्रूरता का वह ग्रास हुआ! १५६



[७]

[नववधू डोले से उतर पड़ी। पति का शव गोद में लिया और चिता पर जा बैठी, पर जलने से पूर्व अपना एक हाथ काटकर अपने बूढ़े श्वसुर के लिए और दूसरा एक सैनिक से कटवाकर चारण के लिए भेजे। इस तरह वह वीरबाला सती होगई।]

पोंछ किया सुहाग-टीका,
छीन मंगलपट अवनी का,
कुसुम का या कर रंग हरण,
रक्त-रंजित था सांध्य-गगन ?

छिड़कने को शोणित-रोली,
थाल में अंबर के घोली ? ६

दिशाएँ सूनी, मौन विजन,
भरा था सब मे सूनापन।
क्षितिज का सूना-सा अञ्चल,
पड़ा था विशद किन्तु अविचल।

मुख-श्री खोकर सैनिकगण,
खड़े थे लेकर सूनापन। १२

जय-श्री मे परिपूर्ण हुआ,
गर्व-गरिमा मे चूर्ण हुआ,
रणस्थल से रिपु विमुख हुआ,
शेष सब मे दुख प्रमुख हुआ।

निहत-हत मे सब मौन रहे,
वेदना मन की कौन कहे? १८

"वर-वधू लखने को आकुल,
स्रोत-सा बढ नर-नारी-कुल,
मिलेगा अविश्रान्त आकर,
हृदय की उत्सुकता से भर।

हर्षमय वह मगल-स्वागत,
किस तरह होगा हाय ! विगत ? २४

हुआ मत्रा से अभिसिंचित,
न सूखा है ललाट[1] किंचित।
वधू की वह सुहाग-रेखा,
न जिसने दूजा दिन देखा,

क्रूरता के हाथो ने यो,
पोंछ दी स्वप्न-लोक-सी क्यों ? ३०

[1] माथा।

अरी, ओ री अरुण सन्ध्या !
ला रही तू जो चिरवन्द्या[1]
निशा, विश्रान्तिमयी[2] काली
न बीते, भरे न फिर लाली

निराली लाकर रही उषा ?
न देखे निज दुर्भाग्य स्नुषा[3] ।" ३६

सभी थे जब यों चिन्तारत,
मूढ कर्त्तव्य, दशा विस्मृत,
रण-स्थल में शोणित-धारा,
दृश्य दर्शाती थी न्यारा ।

चतुर्दिक भीषण भयशीला,
हो रही थी पिशाच-लीला[4] । ४०

१ सदा से आदरणीय । २ विश्रामदायक । ३ वधू । ४ प्रेत क्रीड़ा ।

रुण्ड-मुण्डों का लख स्पन्दन,
घायलों का नकरुण क्रन्दन,
सिहर उठते थे दर्शकगण।
देखकर वह शोणित-वर्षण,

दिशाओं का कम्पित था मन,
शोक-विह्वल था नील गगन। ५८

बीच में बुझे हुये रवि-सा,
अकथ, अद्भुत, प्रसुप्त छवि-सा,
शौर्य की प्रतिमा-सा[1] सुन्दर,
निहत आहत मातुल प्रवर,

पड़ा था शान्त, मौन, निश्चल,
ओढ़ चिर-निद्रा का अञ्चल। ५९

[1] मूर्ति।

अनावृत[1] करके चन्द्रानन,
उलटकर नूतन अवगुंठन[2],
भंगकर सकरुण नीरवता,
पालकी में माधवी-लता,
विद्युत्-रेखा[3] सी ओजमयी[4],
उतर कर भूपर खड़ी हुई। ६०

उग्र[5] ले भाव एक मुखपर,
अटल दृढ़ता ला ओठों पर,
दृगों में भरकर खर ज्वाला,
दीप्त थी दुर्गा-सी बाला।
उसे लख सध्या म्लान हुई।
किरण तम-लीन समान हुई। ६६

१ खुला। २ घूँघट। ३ बिजली की लकीर। ४ तेजस्विनी।
५ तीक्ष्ण। ६ घड़ी।

प्रखर सौंदर्य निहार प्रचुर,
बुझे जलकर वीरों के उर।
उदासी में छाये वन-मन,
घिरे करुणा के काले घन।

परस्पर यों विचार विनिमय,
लगे करने सब लोग सभय। ८२

"करेगा निठुर दैव अब क्या?
प्रलय पर वज्र पड़ेगा या?
हिमालय-सी दृढ़ता का तन,
लिये है क्या सलिलाप्लावन[1]?

छिपाये भीषण आन्दोलन[2],
हो रहा दोलित[3] उसका मन? ८३

१ आँसुओं की बाढ़। २ हलचल। ३ कंपित।

अटलता के उर में चंचल,
छिपा है क्या विस्फोट तरल ?
निहित हैं क्या उस बाला की,
भग्न बिखरी मणिमाला की,

मौन में हाहाकार, रुदन
ओज में विपुल करुण-क्रन्दन ?" ८४

लखकर उनकी मनोव्यथा,
लाज की करके दूर प्रथा,
वीर-ललना[1] ने खोला मुख,
हुई अति दृढ़ता से उन्मुख—

"चूड़ियों की रक्षा के हित,
बहाया सबने रक्त अमित । ९०

1 वीरांगना ।

प्राप्तकर ऐसे स्नेहीजन,
बन्धुओ ! धन्य हुआ था तन।
वक्र थी किन्तु भाग्य-रेखा,
उसे कब किसने हा ! देखा ?

विधाता की जो दृष्टि रही,
हुई लिपि उसकी आज सही ! ९६

•

ऋणी हूँ, और रहूँगी मैं,
स्नेह-आभार सहूँगी मैं।
चिता का कर यदि आयोजन[1],
मुझे दे अन्तिम आश्वासन[2]।

कर सकूँ पालन जिससे व्रत,
सती का रहे सुरक्षित सत।" १०७

१ प्रबंध। २ संतोष, धीरज।

शीघ्र सम्पूर्ण निदेश[1] हुआ,
अश्रुजलमय सब देश हुआ।
चिता चन्दन की एक बनी,
गन्ध-द्रव्यों[2] से खूब सनी।

यहीं थी क्या शय्या कोमल!
विधाता विरचित स्निग्ध धवल !! १०८

गोद में ले प्रियतम का शव,
हुई आसीन चिता पर तब,
भाग्य-वंचित यह नवबाला,
खोल कुंचित[3] कुन्तल-माला[4],

वेश था मगलमय अनुपम,
भव्य भावों मे था सयन! ११४

१ आज्ञा। २ चीजों। ३ घुँघराले। ४ केश-कलाप।

खड़े ये घिरकर सैनिकगण,
उन्हें यों करके संबोधन,
सती ने कहा कि, "बन्धुप्रवर !
काटकर देती हूँ मैं कर।

श्वसुर को मेरे यह देना,
निवेदन भी यों कह देना—१२०

'सुत वधू उनकी थी ऐसी,
पुत्र की प्रतिभा थी जैसी।
न मरने से वह रंच डरी,
परीक्षा में पूरी उतरी।

ग्रन्थिबंधन[1] था खूब सुदृढ़,
इसीसे सकी स्वर्ग में चढ़ !' १२६

१ गँठजोड़ा।

एक अभिलाषा को लेकर,
कि उसको मिल न सका अवसर
श्वसुर-पद पूजा का किञ्चित,
गई वह सेवा से वञ्चित[1]!

न दर्शन तक हा! कर पाई,
न सिर चरणों पर धर पाई! १३२

उसीका स्मारक[2] सलिलाशय[3],
एक बनवाना शोभामय।
शौर्य का कीर्ति-पुञ्ज भरना,
स्तम्भ भी यहाँ खड़ा करना।

पथ दूरस्थ छोड़ विस्मित,
जहाँ आये पथचारी[4] नित। १३८

१ रहित। २ यादगार। ३ जलाशय। ४ पथिक।

सुनें, रोयें फिर आह भरें।
उच्छ्वसित शोक सिन्धु उतरे।
कहें—सोते हैं दो प्रेमी,
यहाँ पर शौर्य क्षेम-नेमी।

चलें तब कर अश्रु सिंचन,
अमर हो प्रणयतीर्थ पावन।," १४४

कहा फिर एक ओर मुडकर—
"काट लो भाई! यह भी कर,
इसे ले चारण[१] को देना,
और यों उससे कह देना—

'कि ऐसी थी क्षत्रिय-बाला
कुलव्रत उसने यों पाला! १५०

१ कवि।

रुष्ट हों गिरा[1] महारानी,
मूकवत्[2] कुण्ठित हो वाणी,
न सूझे भाव, हृदय हत हो,
कल्पना आहत विस्मृत हो,

इसे स्मृति-मन्दिर से लेकर,
सान प्रतिभा पर देना धर। १६८

न शब्दों को स्वर छूता हो,
न भाषा में बलबूता हो,
काव्य-वीणा हो जब नीरव,
मौन हो कीर्ति कुंज कलरव[3],

रक्त का स्पन्दन शिथिलित हो,
हृदय का गौरव विगलित[4] हो, १७४

१ सरस्वती। २ मौन सी। ३ यश रूपी कुंज का कबूतर।
४ नष्ट

सुन लो जब आदर्श सभी,
याद कर लेना इन्हें सभी।
काव्य जो कभी रचो इस पर,
पहुँच भी हो जिसकी घर घर।

मती का गान नक न छिड़ा',
कम मे करना गो गुप्ता'—१८०

वासना का केवल साधन,
रहेंगी जबतक रमणीगण[1],
कोप का भाजन स्वयवरण[2]
रहेगा और मचेगा रण

इसी विधि होगा स्वत्व[3] हरण,
बँधेंगे यों ही रण कंकण। १९२

देश में सुख-निद्रा रचक[4],
न सोयेगा कोई तबतक।
भरेंगे करुणा से घर घर,
बनेंगे महलों के खँडहर।

हास्य से होंगे वंचित मुख,
मेघ बरसेंगे केवल दुख। १९८

१ स्त्रियाँ। २ इच्छानुसार वर चुनना। ३ अधिकार।
४ थोड़ा भी।

पराभव', दैन्य, रुग्ण-अन्धता,
करी रीति दुर्दिन के घर !,'
गई प्याला पाला ज्यों ही,
धधकते जली चिता ज्यों ही।

उतार ज्वालाओं के घर,
मरी थी जिस क्षण मैं घर । २०५

[८]

उपसंहार

यही है कोडमदेसर पुण्य,
जहाँ गौरव बन बैठा गुण्य,
गुणक हो भरा कीर्ति पानी,
लब्धि मिलती है मनमानी।

रसों के सागर चढते हैं,
ज्वार पर ज्वार उमडते हैं। ६

धरित्री' हँसती औ' रोती,
पिरोती फूलों में मोती,
बताती, "यही सभी मोती,
मृगी आ जहाँ मीन होती,
फिर पीती, औ' धन पाती।
प्यास भर [illegible] की मोती। १८

यहीं कुल-बालाएँ आतीं,
भाव-सुमनों को भर लातीं,
चढ़ातीं, श्रद्धा दरशातीं,
शौर्य के पुण्य गीत गातीं,

आत्मबल सञ्चय कर जातीं,
कि जिसमें अमर नाम पातीं। २९

यहीं युग-युग की कल्पलता,
यहीं शयिता[1] है प्रेम-रता।
पथिक टुक[2] यहाँ बिलम[3] जाते,
अश्रु पीते, जब सुन पाते—

कि बरसी यहीं रक्त-रोली,
प्राण की यहीं हुई होली।" ३०



१ शयन किये। २ तनिक। ३ ठहर।